International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(5): 197-199

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(5): 197-199
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 07-06-2020
Accepted: 12-09-2020

डॉ. हरिनाथ झा
यू.जी.सी., नेट, जे.आर.एफ, संस्कृत, संस्कृताध्यापक (माध्यमिक), मधुबनी, बिहार, भारत।

Corresponding Author:
डॉ. हरिनाथ झा
यू.जी.सी., नेट, जे.आर.एफ, संस्कृत, संस्कृताध्यापक (माध्यमिक), मधुबनी, बिहार, भारत।

श्रीमद्भगवद्गीता में निष्काम कर्म का स्वरूप

डॉ. हरिनाथ झा

भूमिका

गीता की रचना निष्क्रिय और किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन को कर्म के विषय में मोहित कराने के उद्देश्य से की गई है। यही कारण है कि गीता में श्रीकृष्ण निरन्तर कर्म करने का आदेश देते हैं। अतः गीता का मुख्य विषय 'कर्मयोग' कहा जा सकता है।

कर्म का अर्थ आचरण है। सत्कर्म से ईश्वर को प्राप्त्य किया जा सकता है। गीता के कर्मयोग का ज्ञान योग से कोई विरोध नहीं है, अपितु गीता का निष्काम कर्म ज्ञानी द्वारा ही सम्पादित हो सकता है। देहधारी प्राणी के लिए कर्मों का सर्वथा त्याग सम्भव नहीं है। प्रकृति के सत्त्वरजस्तमोगुण सभी प्राणियों को विवश करके कर्म कराते हैं यह सारा लोक कर्म से बँधा है। [1] गीता ने कर्मयोग में प्रवृत्ति और निवृत्ति का अद्भूत समन्वय किया है। गीता कर्म का निषेध नहीं करती, कर्म में फलाशक्ति या कामना का निषेध करती है। वासना, कामना, आसक्ति या फलाकांक्षा कर्म का विष–दन्त है जो कर्ता को कर्म बन्धन में बाँधता है। इस विषदन्त को निकल देने पर कर्म में बाँधने की शक्ति नहीं रह जाती है। गीता का 'कर्मयोग' 'नैष्काम' (कर्म निषेध) नहीं है, अपितु 'निष्काम कर्म' (कामना रहित कर्म; कामना निषेध) है। 'संन्यास' का अर्थ कर्म का त्याग नहीं है, किन्तु कामना का त्याग है। त्याग का अर्थ कर्म का त्याग नहीं अपितु कर्मफल का त्याग है–

'काम्यनां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणः।। [2]

गीता की सुप्रसिद्ध उक्ति है–तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, कर्म–फल में तुम्हारा कोई अधिकार नहीं; अतः तुम कर्म–फल की कामना या फलासक्ति मत करो, और नहीं तुम्हारी प्रवृत्ति कर्म और न करने में है। [3]

कूट-शब्द: निष्क्रिय, किंकर्त्तव्यविमूढ, नैष्काम, कर्मयोग, निष्काम, कर्म, प्राणी, वासना, कामना, आसक्ति, प्रवृत्ति, निवृत्ति, संन्यास, त्याग।

शोध-प्राकल्पना:

यहाँ पर यह आपत्ति उठाई जाती है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बिना फल की इच्छा से कोई कर्म नहीं किया जा सकता। बिना किसी प्रयोजन के तो मंदपुरुष भी कर्म में पवृत्त नहीं होता– **प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते**। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह सही हो सकता है। इसीलिए गीता का निष्काम कर्म ज्ञान और भक्ति दोनों से अनुप्राणित है। प्रारम्भ में यदि कर्म के लिए कामना आवश्यक ही हो तो लौकिक कामनाओं का त्याग करके साधकों को केवल आध्यात्मिक उन्नति से कार्य करना चाहिए; भगवत्प्रीति के लिए भगवदर्पण बुद्धि से कर्म से अध्यात्मिक उन्नति होती है और कर्मों द्वारा बन्धन नहीं होता जैसे पद्मपत्रा जल से लिप्त नहीं होता। [4]

यह सत्य है कि पूर्णतया निष्काम कर्म से जीवन्मुक्त सिद्ध पुरुष के लिए ही सम्भव है। सिद्ध पुरुषों का कोई स्वार्थ नहीं होता। उनके कार्य लोक–संग्रह के लिए, लोक–कल्याण के लिए होता है। ब्रह्म ज्ञान के बाद कोई ज्ञातव्य शेष नहीं रहता, कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता। ब्रह्मानन्दपीयूष–पान के बाद कोई पातव्य शेष नहीं रहता। [5]

सिद्ध पुरुष के लिए कोई कर्तव्य नहीं है। उसका (तस्य) कोई कार्य शेष नहीं है। [6]

गीता में निष्काम कर्म के स्वरूप को उद्घाटित करते हुए आद्य गुरु शंकराचार्य के मतानुसार जहाँ मन को शुद्ध करने के लिए साधन के रूप में कर्म अत्यन्त आवश्यक है, वहाँ ज्ञान प्राप्त हो जाने पर कर्म दूर छूट जाता है। ज्ञान और कर्म एक दूसरे के ठीक वैसे ही विरोधी हैं जैसे प्रकाश और अंधकार। वह ज्ञान कर्म समुच्चय के दृष्टिकोण स्वीकार नहीं करता। उसका विश्वास है कि वैदिक विधियाँ केवल उन लोगों के लिए है, जो अज्ञान और लालसा में डूबे हुए हैं–

तस्माद् गीतासु केवलादेव तत्वज्ञानान्मोक्षप्राप्ति; न कर्म समुचिताम्।
अविद्या कामवत् एव सर्वाणि श्रोतादीनि दर्शितानि।। [7]

आद्यगुरु शंकराचार्य के अनुसार मुक्ति के अभिलाषियों को कर्मकाण्ड की विधियों का परित्याग कर देना चाहिए। इनके अनुसार गीता का उद्देश्य इस बाह्य (नामरूपमय) संसार [8] का पूर्ण दमन है, जिसमें कि सारा कर्म होता है; यद्यपि शंकराचार्य का अपना जीवन ज्ञान प्राप्ति के बाद भी कर्म करते जाने का उदाहरण है। शंकराचार्य के दृष्टिकोण का विकास आनन्दगिरि, श्रीधर, मधुसूदन और अन्य ने भी किया।

रामानुज ने अपनी टीका में संसार की अवास्तविकता और कर्म त्याग के मार्ग के सिद्धान्त का खण्डन किया। [9]

गीता–रहस्य में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने कर्मयोग की बृहद व्याख्या की। उन्होंने इस ग्रन्थ के माध्यम से बताया कि गीता चिन्तन उन लोगों के लिए नहीं है जो स्वार्थपूर्ण सांसारिक जीवन बिताने के बाद अवकाश के समय खाली बैठकर पुस्तक पढ़ने लगते हैं। गीता रहस्य में यह दार्शनिकता निहित है कि हमें मुक्ति की ओर दृष्टि रखते हुए सांसारिक कर्तव्य कैसे करने चाहिये। इस ग्रंथ में उन्होंने मनुष्य को उसके संसार में वास्तविक कर्तव्यों का बोध कराया है।

गीता के समय शुद्धाचरण के अनेक विचार प्रचलित थे। वैदिक कर्म के मतानुसार मानव वैदिक कर्मों के द्वारा अपने आचरण को शुद्ध कर सकता है। उपनिषद् में कर्म को सत्य प्राप्ति में सहायक कहा गया है।

गीता में सत्य की प्राप्ति के लिए कर्म को करने का आदेश दिया गया है। वह कर्म जो असत्य एवं अधर्म की प्राप्ति के लिए किया जाता है, सफल कर्म नहीं कहा जा सकता। कर्म को अंधविश्वास और अज्ञानवश नहीं करना चाहिए। कर्म को इसके विपरीत ज्ञान और विश्वास के साथ करना चाहिये। गीता में मानव को कर्म करने का आदेश दिया गया है। अचेतन वस्तु भी अपना कार्य सम्पादित करते हैं। एक व्यक्ति को कर्म के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये। परन्तु उसे कर्म फलों की चिन्ता नहीं करना चाहिए–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूमा ते संगोऽत्स्वकर्मणि।। [10]

मानव की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि वह कर्म के परिणामों की आशंका से चिंतित रहता है। यदि कर्म से अशुभ परिणाम पाने की आशंका रहती है तब वह कर्म का त्याग कर देता है। इसलिए गीता में निष्काम कर्म (क्पेपदजतमेजमक ।बजपवद) को अपने जीवन का आदर्श बनाने का निर्देश किया गया है।

निष्कामकर्म का अर्थ है कर्म को बिना किसी अभिलाषा से करना। जो कर्मफल को छोड़ देता है वही वास्तविक त्यागी है। इसीलिये भगवान ने अर्जुन से कहा है कर्म में तेरा अधिकार है फल की चिन्ता मेरे ऊपर छोड़ दे।

गीता का प्रतिपाद्य विषय ही है निष्कामकर्मयोग, जिसे कर्मयोग की संज्ञा दी जाती है। द्वितीय अध्याय में भगवान् ने कहा है–'धनंजय, आसक्ति रहित होकर कर्म का पालन करो। कर्म करने में सफलता मिले या असफलता। दोनों में समता की जो मनोवृत्ति है उसे ही कर्मयोग कहते हैं। [11] फिर कहते हैं–**'योगः कर्मसु कौशलम्'**। अर्थात् समत्व बुद्धियोग के लिए ही चेष्टा करने का आदेश दिया गया है। ''हे अर्जुन जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है वह श्रेष्ठ है। [12]

पंचम अध्याय में अर्जुन के यह पूछने पर कि कर्मों के संन्यास और निष्कामकर्मयोग में कौन सा उत्तम और कल्याणकारी है। श्रीकृष्ण कहते हैं–'कर्मों का संन्यास और निष्कामकर्मयोग यह दोनों ही परम कल्याण के करने वाले हैं परन्तु इन दोनों में भी कर्मों के संन्यास से निष्कामकर्मयोग श्रेष्ठ है।' [13]

निष्कामकर्मयोग की महिमा का उल्लेख करते हुए गीता में कहा गया है–

योगयुक्तः मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति। [14]

अर्थात् निष्काम कर्मयोगी परब्रह्मपरमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।

गीता की रचना यह प्रमाणित करती है कि संपूर्ण गीता कर्तव्य के लिए प्रेरित करती है। परन्तु कर्म निष्काम–भाव अर्थात् फल की प्राप्ति की भावना का त्याग करके करना ही परमावश्यक है। प्रो0 हरियन्ना के शब्दों में गीता कर्मों के त्याग के बदले कर्म में त्याग का उपदेश देती है। राधाकृष्णन ने भी कर्मयोग को गीता का मौलिक उपदेश कहा है–

> The whole setting of Geeta
> Points out that it is an exhortation to action [15]

सकामकर्म मानव को बन्धन की ओर ले जाते हैं। परन्तु निष्कामकर्म इसके विपरीत मानव को स्थित प्रज्ञ की अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम सिद्ध होते हैं।

निष्काम कर्म की शिक्षा गीता की अनमोल देन कही जाती है। लोकमान्य तिलक के अनुसार गीता का मुख्योपदेश 'कर्मयोग' ही है। निष्काम कर्म के उपदेश को पाकर अर्जुन युद्ध के लिए तत्पर हो गये। गीता की दृष्टि में कर्म का मार्ग भी युक्ति के लिए उतना ही समर्थ साधन है। जितना कि ज्ञान का मार्ग और ये दोनों मार्ग दो अलग– अलग श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए है। वे एकान्तिक नहीं है, अपितु परस्पर पूरक हैं। मार्ग सारा एक ही है जिसमें अलग–अलग प्रावस्थाएँ (दिशाएँ और दौड़) सम्मिलित हैं–

रूचिनां वैचित्रयादृजुकूटिल नानापथजुषां।
नृनामेकोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।। [16]

'जीवन के ये दो प्रकार हैं, जो दोनों ही वेदों द्वारा समर्थित हैं– एक है 'प्रवृत्तिमूलक मार्ग' और दूसरा है 'निवृत्तिमूलक' मार्ग।' [17] जीवन की इन दोनों पद्धतियों का मूल्य समान हैं। गुरु इस बात को स्पष्ट करता है कि ज्ञान या बुद्धि का कर्म से कोई विरोध नहीं है। शंकराचार्य ने इस बात को स्वीकार किया है कि कर्म ज्ञान के साथ रह सकता है। कर्म को ज्ञान प्राप्त करने के साधन के रूप में नहीं अपनाया जाता, अपितु साधारण लोगों के सामने उदाहरण प्रस्तुत करने के रूप में अपनाया जाता है। ज्ञानी व्यक्ति के कर्म में जैसे कि गीता के उपदेश करने वाले कृष्ण के कर्म में आत्मभावना और कर्मफल की इच्छा का अभाव रहता है–

न क्रिया रहितं ज्ञानं न ज्ञान रहिता क्रिया।
ज्ञानक्रियाविनिष्पन्नः आचार्यः पशुपाशहा।। [18]

गीता में ज्ञान, भक्ति और कर्म का अनुपम समन्वय है। ईश्वर को ज्ञान से अपनाया जा सकता है तथा भक्ति से भी अपनाया जा सकता है। जिस व्यक्ति को जो मार्ग सुलभ हो वह उसी मार्ग से ईश्वर को अपना सकता है। ईश्वर में सत्, चित् और आनन्द है।

जो ईश्वर को ज्ञान से प्राप्त करता है उसके लिये वह प्रकाश है। जो भावना से अपनाना चाहता है उसके लिए प्रेम है और जो कर्म के द्वारा ईश्वर को अपनाना चाहता है उसके लिए वह शुभ है। जिस प्रकार विभिन्न मार्गों से एक लक्ष्य पर पहुँचा जा सकता है उसी प्रकार विभिन्न मार्गों से ईश्वर की प्राप्ति संभव है।

गीता के तीनों मार्गों में वस्तुतः कोई विरोध नहीं है। तीनों मनुष्य के जीवन के तीन अंग हैं। इसलिये तीनों आवश्यक हैं। ये तीनों मार्ग धार्मिक चेतना की माँग को पूरा करते हैं। ज्ञानात्मक पहलू के अनुरूप गीता का ज्ञान मार्ग है, भावनात्मक पहलू के अनुरूप गीता में भक्तिमार्ग है। क्रियात्मक पहलू के अनुरूप गीता में कर्म–मार्ग हैं।

परम पद के जिज्ञासु को अपने कर्मों के फल की इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए। अनासक्त होकर कर्म को करते रहना चाहिए। यद्यपि गीता के अन्त में ज्ञान को ही श्रेष्ठ कहा गया है [19] और ज्ञान की ही प्राप्ति से परम पद की प्राप्ति होती है, किन्तु कर्म और भक्ति के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। बिना पराभक्ति के ज्ञान भी नहीं प्राप्त किया जा सकता है और यह भी सत्य है कि अनासक्त होकर कर्म किये बिना भक्ति नहीं मिलती। इन तीनों का परस्पर अति घनिष्ठ और एक प्रकार से अविनाभाव संभव है। [20]

अनासक्त कर्म की महिमा गीता में बहुत अच्छी तरह से कही गयी है। [21] किसी भी दशा में कर्म से च्युत न होना चाहिए किन्तु अनासक्त होकर ही कर्म करना चाहिये। [22] गीता में इसी प्रकार के कर्म करने का उपदेश है जो कामना और अहं भाव का परित्याग कर कर्म करता है उसे ही शान्ति मिलती है। [23] वही परमानन्द को प्राप्त करता है [24], वही यथार्थ में पंडित है [25], वही वस्तुतः संन्यासी है और उसे कर्मजन्य बन्धन नहीं मिलता [26], वह सभी पापों से मुक्त रहता है। ऐसे ही कर्म करने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है [27], वही योग की सिद्धि को प्राप्त करता है। [28] वही सात्विक कर्म करने वाला होता है। [29] अतएव जो कर्म किया जाय उसके फल के लिए कभी भी इच्छा नहीं करनी चाहिए और वह कर्म केवल कर्तव्य की बुद्धि से ही करना चाहिए। [30]

निष्कर्ष:

सत्त्व, रजस् और तमस् से बना हुआ मनुष्य का शरीर है। जब तक मनुष्य के शरीर में रजोगुण रहेगा, मनुष्य को कर्म करना ही पड़ेगा। ऐसी स्थिति में अपने कल्याण के लिए तथा लौकिक एवं पारलौकिक आनन्द की प्राप्ति के लिए भगवान् की प्राप्ति के लिए मनुष्य को सदैव निष्काम भाव से एवं कर्तव्य बुद्धि से ही सभी कर्म करना चाहिए।

संदर्भ–संकेत :

1. गीता–3–5–9, लोकोऽयं कर्म बन्धनः।
2. गीता–18.2
3. गीता–2. 47 कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
   मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।
4. गीता–5.10 लिप्यते न स पापेन।
5. भारतीय दर्शन आलोचना और अनुशीलन, चन्द्रधर शर्मा, पृ0–19
6. गीता–4.37; 4.33
7. शंकराचार्य की टीका–2.11, भूमिका
8. गीता शास्त्रास्य प्रयोजनं परं निःश्रेयसम्।
9. भगवद्गीता–डॉ0 सर्वपल्लीराधाकृष्णन, पृ0–19
10. गीता–2.47
11. गीता–2.48
12. गीता–3.9
13. गीता–5.2
14. गीता–5.6
15. Ind. phil. vol. 1 P. 564
16. महिम्नस्तोत्रा–9
17. द्वाविगावथ पन्थानौ यस्मि वेदाः प्रतिष्ठिताः।
    प्रवृत्तिलक्षणो धर्मः, निवृत्तिश्च विभाषितः।।
    महाभारत शान्तिपर्व–240, 60
18. भगवद्गीता पर शंकराचार्य की टीका 2.11 अभिनव गुप्त।
19. गीता–3.4
20. भारतीय दर्शन–उमेश मिश्र, पृ0–71
21. गीता–2.55, 71, 72; 3.19; 4.19–21
22. हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलासफी भाग–1, पृ0–147
23. गीता–2.71
24. गीता–2.72
25. गीता–4.19
26. गीता–4.20
27. गीता–4.21
28. गीता–5.11
29. गीता–6.4
30. गीता–18.23